श्री श्री रामकृष्ण कथामृत – 3

श्री मुनसफ अनुकूल सान्याल ने 17 वर्ष की वयस् में श्री श्री माँ के दर्शन जयरामवाटी में किए थे और उन्हें कथामृत का यह तीसरा भाग पढ़कर सुनाया था।

—श्री म दर्शन 6:21:5 (1988 संस्करण पृष्ठ 220)

श्री सारदा देवी

(22-12-1853 — 21-7-1920)

प्रथम खण्ड

कलकत्ता में श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के साथ श्रीरामकृष्ण का मिलन

प्रथम परिच्छेद

(विद्यासागर का घर)

आज शनिवार, श्रावण की कृष्णा षष्ठी तिथि, 5 अगस्त 1882 ईसवी। चार बजने को हैं।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कलकत्ते के राजपथ से गाड़ी में बादुड़बागान की ओर से आ रहे हैं। साथ में भवनाथ, हाजरा और मास्टर। विद्यासागर के घर जाएँगे।

ठाकुर की जन्मभूमि हुगली जिले में कामारपुकुर ग्राम है। यह ग्राम विद्यासागर की जन्मभूमि वीरसिंह नामक ग्राम के निकट है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण बाल्यकाल से विद्यासागर की दया की बातें सुनते आ रहे हैं। दक्षिणेश्वर की कालीबाड़ी में रहते-रहते ही उनके पाण्डित्य और दया की बात सुनते रहते हैं। 'मास्टर (श्री म) विद्यासागर के स्कूल में पढ़ाते हैं',

सुनकर उनसे कहा, ''मुझे विद्यासागर के पास क्या ले चलोगे? मेरी उन्हें मिलने की बड़ी इच्छा है।''

मास्टर ने विद्यासागर से यह बात कही। विद्यासागर ने आनन्दित होकर उन्हें एक दिन शनिवार 4 बजे अपने साथ लाने के लिए कहा। मात्र एक बार पूछा, ''किस प्रकार का 'परमहंस' है? वे क्या गेरुआ कपड़ा पहनते हैं?''

मास्टर ने कह दिया था, ''जी नहीं, वे एक अद्‌भुत पुरुष हैं। लाल कन्नी की धोती पहनते हैं, कमीज-कोट पहनते हैं, वार्निश की हुई चट्टी जूता (स्लीपर) पहनते हैं। रासमणि की कालीबाड़ी में एक कमरे में रहते हैं, उस कक्ष में तख्तपोश बिछा हुआ है। उसके ऊपर बिछौना, मसहरी है, उस बिस्तर पर सोते हैं। बाहरी कोई भी चिह्न नहीं है। किन्तु ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। दिन-रात उनका ही चिन्तन करते हैं।

गाड़ी दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी से चली। पुल पार करके, श्यामबाजार से होकर धीरे-धीरे अमहर्स्ट स्ट्रीट में आ गई। भक्तों ने कहा, अब गाड़ी बादुड़बागान के निकट आ गई है। ठाकुर बालक की तरह आनन्द से बातें करने लगे। अमहर्स्ट स्ट्रीट में आकर हठात् उनका भावान्तर हो गया, जैसे ईश्वरावेश होने को है।

गाड़ी श्री राममोहन राय की बागानवाटी के निकट से आ रही है। मास्टर ने ठाकुर का भावान्तर नहीं देखा, सहसा कह दिया, यही है राममोहन राय का घर। ठाकुर विरक्त हो गए— बोले, ''अब ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं।'' ठाकुर भावाविष्ट हो रहे हैं।

विद्यासागर के घर के सामने गाड़ी खड़ी हो गई।

घर दो तल का है, अंग्रेज़ी रुचि का है। जमीन के बीच में घर और जमीन के चारों ओर प्राचीर है। घर के पश्चिमी किनारे पर सदर दरवाज़ा और फाटक हैं। फाटक द्वार के दक्षिण में है। पश्चिम की दीवार और दुमंजिले गृह के मध्य बीच-बीच में पुष्प-वृक्ष हैं। पश्चिम की ओर के नीचे के कमरे से होकर सीढ़ियों द्वारा ऊपर चढ़ना होता है। ऊपर विद्यासागर रहते हैं। सीढ़ियों से चढ़ते ही उत्तर में एक कमरा है, उसके

पूर्व की ओर हॉल कमरा है। हॉल के दक्षिण-पूर्व के कमरे में विद्यासागर शयन करते हैं। ठीक दक्षिण में और एक कमरा है। ये कई कमरे बहुमूल्य पुस्तकों से परिपूर्ण हैं। दीवार के निकट पंक्तिबद्ध पुस्तक-रैकों में अति सुन्दर रूप से जिल्द बँधी हुई बहुत-सी पुस्तकें सजाई हुई हैं। हॉल कमरे की पूर्वी सीमा के अन्त में टेबल और चेयर हैं। विद्यासागर जब बैठकर कार्य करते हैं तब वे यहीं पर पश्चिमास्य होकर बैठते हैं। जो लोग मिलने-जुलने आते हैं, वे लोग भी टेबल के चारों ओर चेयरों (कुर्सियों) पर बैठते हैं। टेबल पर लिखने की सामग्री— कागज, कलम, दवात, ब्लॉटिंग, बहुत से चिट्ठी-पत्र, जिल्द बँधी हिसाब की कापी, फ़ाइल्स, दो-चार विद्यासागर की पाठ्य पुस्तकें रखी हुई दिखाई दे रही हैं। उधर काष्ठासन (तख्तपोश) के ठीक दक्षिण के कमरे में खाट बिछी हुई है— इसी स्थान पर ये सोते हैं।

टेबल के ऊपर जो पत्रादि दबाकर रखे हुए हैं, उनमें क्या लिखा हुआ है! शायद किसी विधवा ने लिखा है— मेरा नाबालिग शिशु अनाथ है, कोई देखने वाला नहीं है, आप को देखना होगा। किसी ने लिखा है, आप खरमाता चले गए थे, जभी हमें महीना ठीक तरह से नहीं मिला। बड़ा कष्ट हुआ। किसी गरीब ने लिखा है, आपके स्कूल में फ्री (बिना फीस) भर्ती हुआ हूँ किन्तु मेरी पुस्तकें खरीदने की क्षमता नहीं है। किसी ने लिखा है, मेरे परिवार को खाने के लिए नहीं मिल रहा। मुझे कोई नौकरी दिलवा दें। उनके स्कूल के किसी शिक्षक ने लिखा है, मेरी बहिन विधवा हो गई है। उसका समस्त भार मुझे लेना पड़ा है। इस वेतन में मेरा गुजारा नहीं चलता। शायद किसी ने विलायत से लिखा है, मैं यहाँ पर विपद्-ग्रस्त हो गया हूँ। आप दीनों के बन्धु हैं, कुछ रुपया भेजकर इस आसन्न विपद् से मेरी रक्षा करें। फिर और किसी ने लिखा है, अमुक दिन फैसले का दिन निर्धारित है। आप उस दिन आकर हमारा विवाद मिटा दें।

ठाकुर गाड़ी से उतरे। मास्टर रास्ता दिखलाते घर में ले जा रहे हैं। आँगन में पुष्प-वृक्ष हैं। उसके बीच से आते-आते ठाकुर ने बालक की तरह बटनों पर हाथ लगाकर मास्टर से पूछा, ''मेरे कुर्ते के बटन खुले हुए हैं,

इसमें कुछ दोष तो न होगा?'' शरीर पर एक लट्ठे का जामा (कुरता) है, लाल किनारे की धोती है, उसका आँचल कन्धे पर पड़ा हुआ है। पाँव में वार्निश हुआ चटीजूता (स्लीपर) है। मास्टर ने कहा, ''आप इसके लिए मत सोचें, आप का कोई दोष नहीं होगा, आपको बटन लगाने की जरूरत नहीं है।'' बालक जैसे समझाने पर निश्चिन्त हो जाता है, ठाकुर भी वैसे ही निश्चिन्त हो गए।

द्वितीय परिच्छेद

(विद्यासागर)

सीढ़ियों से चढ़कर एकदम प्रथम कमरे में (चढ़ने के बाद ठीक उत्तर के कमरे में) ठाकुर भक्तों के संग प्रवेश कर रहे हैं। विद्यासागर कमरे में उत्तर की तरफ दक्षिणास्य हुए बैठे हैं। सम्मुख एक चौकोन लम्बा पॉलिश हुआ टेबल (मेज) है। मेज के पूर्व के किनारे पर एक पीठ के सहारे वाला बेंच है। टेबल के दक्षिण और पश्चिम की तरफ कई कुर्सियाँ हैं। विद्यासागर दो-एक बन्धुओं के संग बातें कर रहे हैं।

ठाकुर के प्रवेश करने पर विद्यसागर ने खड़े होकर दण्डायमान होकर अभ्यर्थना की। ठाकुर पश्चिमास्य, टेबल के पूर्व किनारे खड़े हैं। बायाँ हाथ टेबल के ऊपर है। पीछे बेंच है। विद्यासागर के पूर्वपरिचित की तरह उन्हें एक दृष्टि से देख रहे हैं और भाव में हँस रहे हैं।

विद्यासागर की वयस् प्राय: 62/63 होगी। श्रीरामकृष्ण से वे 16/17 वर्ष बड़े होंगे। शरीर पर सफेद किनारे की धोती, पाँव में स्लीपर और बदन पर फ्लालैन का आधी बाँहों का कुरता है। सिर उड़ियाकट की हजामत वाला। बातें करते समय दाँत उज्ज्वल दिखाई देते हैं। दाँत सब नकली हैं। खूब बड़ा सिर। उन्नत ललाट और कुछ नाटी आकृति। ब्राह्मण हैं,

तभी गले में उपवीत।

विद्यासागर में बहुत गुण हैं।

प्रथम— विद्यानुराग। एक दिन मास्टर (श्री म) के निकट यह कहते-कहते सचमुच रो पड़े थे, ''मेरी तो बहुत इच्छा थी कि पढ़ता-लिखता रहूँ, किन्तु कहाँ हुआ वैसा! संसार में फँस कर कुछ भी समय नहीं मिला।''

द्वितीय— दया सर्व जीवों पर। विद्यासागर हैं दया के सागर। 'बछड़ों को माँ का दूध नहीं मिलता', देखकर स्वयं कई वर्षों तक दूध पीना बन्द कर दिया था। अन्त में शरीर अतिशय अस्वस्थ हो जाने से अनेक दिनों पश्चात् फिर दोबारा लेना आरम्भ किया था।
गाड़ी पर नहीं चढ़ते— घोड़ा तो अपना कष्ट कह नहीं सकता ना! एक दिन देखा, एक मजदूर हैजे (कॉलरा) से पीड़ित हुआ सड़क पर पड़ा है, पास ही टोकरा पड़ा है— देखकर अपनी गोद में उठाकर उसे घर ले आए और सेवा करने लगे।

तृतीय— स्वाधीनता-प्रियता। मालिकों के संग एकमत न होने से, संस्कृत कॉलिज के प्रधान/अध्यक्ष (प्रिन्सीपल) का कार्य छोड़ दिया।

चतुर्थ— लोकोपेक्षा (लोगों की उपेक्षा) नहीं करते थे। एक शिक्षक को प्यार करते थे, उनकी कन्या के विवाह के समय स्वयं कुआँरेपन का कपड़ा बगल में लेकर उपस्थित हो गए।

पञ्चम— मातृभक्ति और मन का बल। माँ ने कहा था, ईश्वर! तुम यदि इस विवाह (भाई के विवाह) में न आए तो फिर मन बहुत खराब होगा। तब कलकत्ते से पैदल गए। रास्ते में दामोदर नदी थी। नौका नहीं मिली, तैर कर पार हो गए। उन्हीं गीले कपड़ों से विवाह-रात्रि में ही वीरसिंह में माँ के पास जा उपस्थित हुए। बोले— माँ, मैं आ गया।

(श्रीरामकृष्ण के प्रति विद्यासागर की पूजा और सम्भाषण)

ठाकुर भावाविष्ट हो रहे हैं और काफी देर से भाव में खड़े हुए हैं। भावसंवरण करने के लिए बीच-बीच में कह रहे हैं, 'पानी पीऊँगा'।

देखते ही देखते घर के लड़के और रिश्तेदार-मित्र आकर खड़े हो गए।

ठाकुर भावाविष्ट हुए बेंच के ऊपर बैठ रहे हैं। एक 17-18 वर्ष का लड़का उसी बेंच पर बैठा है— विद्यासागर के पास पढ़ाई के लिए सहायता की प्रार्थना करने आया है। ठाकुर भावाविष्ट हैं— ऋषि की अन्तर्दृष्टि ने लड़के के अन्तर के भाव समस्त जान लिए। थोड़ा सरक कर बैठे और भाव में कहते हैं, 'माँ, इस लड़के की बड़ी संसारासक्ति है। तुम्हारा अविद्या का संसार है। यह अविद्या का लड़का है।'

जो व्यक्ति ब्रह्म-विद्या के लिए व्याकुल नहीं है, केवल अर्थकरी विद्या उपार्जन करना तो उसके लिए मात्र धोखा है— क्या यही बात ठाकुर कह रहे हैं?

विद्यासागर ने व्यग्र होकर एक जन को जल लाने के लिए कहा, और मास्टर से पूछ रहे हैं, कुछ खाने के लिए लाने पर क्या ये खाएँगे? उन्होंने कहा, जी हाँ, लाइए ना! विद्यासागर शीघ्रता से भीतर जाकर बहुत-सी मिठाई लाए और बोले, ये वर्धमान से आई हैं। ठाकुर को कुछ खाने के लिए दी गईं। हाजरा, भवनाथ ने भी कुछ पाई। मास्टर को देने के लिए आने पर विद्यासागर बोले, 'यह तो घर का लड़का है, इसके लिए कोई रुकावट (बन्धन) नहीं है।' ठाकुर एक भक्त लड़के की बात विद्यासागर से कहते हैं। यह विशेष लड़का यहाँ पर ठाकुर के सामने बैठा है। ठाकुर बोले, 'यह लड़का अच्छा सत्-गुण सम्पन्न है, और अन्तःसार— जैसे फल्गु नदी। ऊपर रेत है, तनिक खोदने पर ही भीतर जल बहता हुआ दिखलाई देता है।'

मिष्टिमुख करने पर ठाकुर सहास्य विद्यासागर के संग बातचीत करते हैं। देखते ही देखते सारे घर में लोग भर गए— कोई बैठ गया, कोई खड़ा है।

श्रीरामकृष्ण— आज सागर में आकर मिल गया हूँ। इतने दिन नहर, झील,

हद नदी देखी थी। अब सागर देख रहा हूँ। *(सबका हास्य)*।

विद्यासागर *(सहास्य)*— तो फिर नमकीन जल थोड़ा-सा ले जाइए। *(हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण— ना, जी! नमकीन जल क्यों? तुम तो अविद्या के सागर नहीं हो। तुम तो विद्या के सागर! *(सबका हास्य)* तुम क्षीर-समुद्र। *(सबका हास्य)*।

विद्यासागर— आप जैसा चाहें, कह सकते हैं।

विद्यासागर चुप किए रहे। ठाकुर बातें करते हैं।

(विद्यासागर का सात्त्विक कर्म— ''तुम भी सिद्ध पुरुष हो'')

''तुम्हारा कर्म सात्त्विक कर्म है। सत्त्व का रज। सत्त्वगुण से दया होती है। दया के लिए जो कर्म किया जाता है, वह चाहे राजसिक कर्म तो है किन्तु यह रजोगुण है— सत्त्व का रजोगुण। इसमें दोष नहीं। शुकदेव आदि ने लोक-शिक्षा के लिए दया रखी हुई थी— ईश्वर के विषय में शिक्षा देने के लिए। तुम विद्या-दान, अन्न-दान करते हो। यह अच्छा है। निष्काम कर सकने पर ही इससे भगवान-लाभ होता है। जो कोई नाम के लिए या पुण्य के लिए करते हैं, उनका कर्म निष्काम नहीं है। और सिद्ध तो तुम हो ही।''

विद्यासागर— महाशय, किस प्रकार?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— आलु-परवल सिद्ध होने पर (पकने पर) नरम हो जाते हैं। फिर तुम तो बहुत नरम हो। तुम्हारे में इतनी दया है! *(हास्य)*

विद्यासागर *(सहास्य)*— पिसी हुई उड़द की दाल सिद्ध होने पर सख्त हो जाती है। *(सब का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण— तुम वह नहीं हो जी! खाली पण्डित अधपके होते हैं। न इधर के, न उधर के। गीध बहुत ऊँचे उड़ता है, किन्तु नजर उसकी होती है पशु-मरघट पर। जो केवल पढ़े हुए पण्डित हैं, वे सुनने में ही पण्डित हैं, किन्तु उनमें कामिनी-काञ्चन की आसक्ति है— गीध की तरह सड़ी लाश ही खोजते हैं। आसक्ति अविद्या का संसार है। दया, भक्ति, वैराग्य, यह विद्या

का ऐश्वर्य है।

विद्यासागर चुपचाप सुन रहे हैं। सब ही एकटक इस आनन्दमय पुरुष के दर्शन और उनका कथामृत-पान कर रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण— ज्ञानयोग वा वेदान्त-विचार)

विद्यासागर महापण्डित हैं। जब वे संस्कृत-कॉलिज में पढ़ते थे, तब अपनी श्रेणी में सर्वोत्कृष्ट छात्र थे। हर परीक्षा में प्रथम रहते और स्वर्ण-पदक (gold medal) अथवा छात्रवृत्ति प्राप्त किया करते। क्रमशः संस्कृत कॉलिज के प्रधान अध्यापक (प्रिन्सीपल) हो गए थे। उन्होंने संस्कृत व्याकरण और संस्कृत काव्य में विशेष पारदर्शिता लाभ की थी। अध्यवसाय गुण से, अपनी चेष्टा से अंग्रेज़ी सीख ली थी।

धर्म के विषय में किसी को भी शिक्षा नहीं देते थे। उन्होंने दर्शनादि ग्रन्थ पढ़े थे। मास्टर (श्री म) ने एक दिन पूछा था—
'आपको हिन्दू-दर्शन कैसा लगता है।' उन्होंने बताया था,
''मुझे तो बोध होता है, 'वे जो समझाने गए थे, समझा नहीं सके'।''

हिन्दुओं की भाँति श्राद्धादि धर्म-कर्म समस्त किया करते, गले में उपवीत (जनेऊ) धारण करते, बंगाली में जितने पत्र लिखते, उनमें 'श्री श्रीहरिशरणम्' भगवान की यह वन्दना पहले किया करते।

मास्टर (श्री म) ने और एक दिन उनके मुख से, 'वे ईश्वर के सम्बन्ध में कैसा सोचते हैं' सुना था। विद्यासागर ने बताया था,
''उनको तो जाना नहीं जाता। अब कर्त्तव्य क्या है? मेरे मत में कर्त्तव्य है कि हमें स्वयं ऐसा होना उचित है कि यदि सब ही इस प्रकार के हो जाएँ, तो पृथ्वी स्वर्ग बन जाएगी। प्रत्येक को चेष्टा करनी उचित है कि जिससे जगत का मंगल हो।''

विद्या और अविद्या की बात करते-करते ठाकुर ब्रह्मज्ञान की बातें करते

हैं। विद्यासागर महापण्डित। षड्दर्शन पढ़कर समझ लिया है कि शायद ईश्वर के विषय में कुछ भी जाना नहीं जाता।

श्रीरामकृष्ण— ब्रह्म विद्या और अविद्या के पार हैं। वे मायातीत हैं।

(Problem of Evil— ब्रह्म निर्लिप्त— जीव के सम्बन्ध में ही दुःखादि)

''इस जगत में विद्या-माया, अविद्या-माया दोनों ही हैं; ज्ञान-भक्ति है और फिर कामिनी-काञ्चन भी है; सत् भी है, असत् भी है। भला भी है, और साथ ही मन्दा भी है। किन्तु ब्रह्म है निर्लिप्त। भला-मन्दा जीव के पक्ष में है, सत्-असत् जीव के पक्ष में है। उनका इससे कुछ नहीं होता।

''जैसे प्रदीप के सामने कोई तो भागवत पढ़ता है, और कोई जाल (जालसाजी) करता है। प्रदीप निर्लिप्त!

''सूर्य शिष्ट के ऊपर प्रकाश डालता है, और फिर दुष्ट के ऊपर भी प्रकाश डालता है।

''यदि कहो दुःख, पाप, अशान्ति— ये समस्त फिर क्या हैं? उसका उत्तर यही है कि वे समस्त जीव के लिए हैं। ब्रह्म निर्लिप्त हैं। साँप के भीतर विष है, अन्य को काटने पर वह मर जाता है। साँप का किन्तु कुछ नहीं होता।''

(ब्रह्म— अनिर्वचनीय, अव्यपदेश्यम् The Unknown and the Unknowable)

''ब्रह्म जो क्या है, मुख से नहीं बोला जाता। सब चीजें झूठी हो गई हैं। वेद, पुराण, तन्त्र, षड्दर्शन— सब उच्छिष्ट हो गए हैं— मुख में आ गए हैं, मुख से उच्चारित हुए हैं, इसीलिए सब झूठे हो गए हैं। किन्तु एक ही वस्तु केवल उच्छिष्ट नहीं हुई, वही वस्तु है ब्रह्म। ब्रह्म जो क्या है, आज पर्यन्त कोई मुख से बोल नहीं सका है।''

विद्यासागर *(बन्धुओं के प्रति)*— वाह! यह तो बहुत सुन्दर बात है। आज एक विशेष नूतन बात सीखी है मैंने— 'ब्रह्म उच्छिष्ट हुए नहीं'।

श्रीरामकृष्ण— एक बाप के दो लड़के थे। ब्रह्म-विद्या सीखने के लिए पिता ने दोनों को ही आचार्य के हाथ में दे दिया। कई वर्ष के पश्चात् वे दोनों गुरु-गृह से लौट आए। आकर पिता को प्रणाम किया। पिता की इच्छा हुई कि देखूँ इनका ब्रह्मज्ञान कैसा हुआ है! बड़े बेटे से पूछा, 'बेटा तुमने तो समस्त पढ़ा है, 'ब्रह्म कैसा है'— तनिक बताओ न! ज़रा देखूँ तो।' बड़ा बेटा वेद से नाना श्लोक आवृत्ति कर-करके ब्रह्म के स्वरूप को समझाने लगा। पिता जी चुप रहे। जब छोटे बेटे को पूछा, वह सिर झुकाए चुप किए रहा। मुख से कोई भी बात नहीं कही। बाप ने प्रसन्न होकर कहा, 'वत्स, तुम ही थोड़ा-सा समझे हो। 'ब्रह्म जो क्या है'— वह मुख से नहीं बोला जाता'।

''मनुष्य सोचता है कि हम उनको जान पाए हैं। एक चींटी चीनी के पहाड़ पर गई थी। एक दाना खाकर पेट भर गया, और एक दाना मुख में लेकर अपने निवास-स्थान पर जाने लगी। जाते समय सोचती है— अबकी बार आकर सारे का सारा पहाड़ ही ले जाऊँगी। क्षुद्र जीवगण ऐसा ही सोचते हैं। जानते नहीं, ब्रह्म वाक्य-मन के अतीत हैं।

''कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो, उनको कौन जानेगा? शुकदेव आदि बहुत हुए तो काला चिंऊँटा, शायद चीनी के आठ-दस दाने मुख में रख लें।

(ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप— निर्विकल्प समाधि और ब्रह्मज्ञान)

''फिर वेद-पुराण में जो कहा गया है, वह किस प्रकार कहा गया है— जानते हो? एक व्यक्ति के सागर देखकर आने पर यदि कोई पूछे, कैसा देखा? वह व्यक्ति 'हा' करके (मुख बाये) बोला, 'ओह! कैसा देखा! कैसी हिल्लोल-कल्लोल!' ब्रह्म की बात भी वैसी ही है। वेद में है— वे आनन्दस्वरूप, सच्चिदानन्द हैं। शुकदेव आदि ने इसी ब्रह्मसागर-तट पर खड़े होकर दर्शन-स्पर्शन किया था। एक मत में है—ये लोग इस सागर में उतरे नहीं थे। क्योंकि इस सागर में उतर जाने पर फिर लौटना नहीं होता।

''समाधिस्थ होने पर ब्रह्मज्ञान होता है, ब्रह्मदर्शन होता है— उस अवस्था में विचार बिलकुल बन्द हो जाता है, मनुष्य चुप हो जाता है। ब्रह्म क्या वस्तु है— यह मुख से बोलने की शक्ति नहीं रहती।

''नमक की छवि (पुतलिका) समुद्र मापने गई थी। *(सब का हास्य)* कितना गहरा जल है, यह खबर देगी। खबर देना तो फिर हुआ ही नहीं। ज्यों ही उतरना त्यों ही गल जाना। फिर कौन खबर दे!''

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया,
''समाधिस्थ व्यक्ति, जिन्हें ब्रह्मज्ञान हुआ है, वे क्या फिर बातें नहीं करते ?''

श्रीरामकृष्ण *(विद्यासागर के प्रति)*— शंकराचार्य ने लोकशिक्षा के लिए विद्या का 'मैं' रखा था। ब्रह्मदर्शन हो जाने पर मनुष्य चुप हो जाता है। जब तक दर्शन नहीं होता, तब तक ही विचार है। जब तक घी कच्चा रहता है तब तक ही है कलकलानि (शोर)! पक्के घी में कोई शब्द नहीं रहता। किन्तु जब पक्के घी में फिर और कच्ची लुचि (पूरी) पड़ती है, तब फिर एक बार छौं-छौं, कल-कल करता है। जब कच्ची पूरी को पका देता है, तब फिर चुप हो जाता है। वैसे ही समाधिस्थ पुरुष लोकशिक्षा देने के लिए फिर दोबारा उतर आता है, और फिर बातें करता है।

''जितनी देर मधुमक्खी फूल पर नहीं बैठती तब तक भन-भन करती है। फूल पर बैठकर मधुपान करना आरम्भ करने पर चुप हो जाती है। मधुपान करने पर, मतवाली होने पर फिर दोबारा कभी-कभी गुन-गुन करती है।

''तालाब में कलसी में जल भरने के समय भक्-भक् शब्द होता है। पूर्ण हो जाने पर फिर शब्द नहीं। *(सब का हास्य)*। फिर जब जल अन्य घड़े में यदि पलटा जाए तो फिर दोबारा शब्द होता है।'' *(हास्य)*।

चतुर्थ परिच्छेद

ज्ञान और विज्ञान

(अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद और द्वैतवाद का समन्वय
Reconciliation of
Non-dualism, qualified non-dualism and dualism)

श्रीरामकृष्ण— ऋषियों को ब्रह्मज्ञान हुआ था। विषयबुद्धि का लेशमात्र रहने पर यह ब्रह्मज्ञान नहीं होता। ऋषिलोग कितना परिश्रम किया करते! सुबह से ही आश्रम से चले जाते। अकेले सारा दिन ध्यान-चिन्तन करते। रात को आश्रम में लौटकर कुछ फल-फूल खाते। देखना, सुनना, छूना— इन सब विषयों से मन को अलग रखते। तभी फिर ब्रह्म को 'बोधे-बोध' किया करते।

''कलि में अन्न में प्राण है, देहबुद्धि नहीं जाती। इस अवस्था में 'सोऽहम्' कहना ठीक नहीं। सब ही किया जाता है, और फिर 'मैं ही ब्रह्म हूँ' कहना ठीक नहीं। जो विषय-त्याग नहीं कर सकते, जिनकी 'मैं' किसी तरह भी जाती नहीं, उनका 'मैं दास', 'मैं भक्त'— यह अभिमान अच्छा है। भक्तिपथ पर रहने से भी उनको प्राप्त किया जाता है।

''ज्ञानी 'नेति-नेति' करके विषयबुद्धि-त्याग करता है। तब फिर ब्रह्म को जान सकता है। जैसे सीढ़ी के सोपान छोड़ते-छोड़ते छत पर पहुँचा जाता है।

''किन्तु जो विज्ञानी हैं, वे विशेष रूप से उनके साथ आलाप करते हैं। वे और भी कुछ दर्शन करते हैं। वे देखते हैं, छत जिस द्रव्य की बनी है, उसी ईंट, चूने, सुरखी से ही सीढ़ी भी तैयार की गई है। 'नेति-नेति' करके जिनको ब्रह्म कहकर (जानकर) बोध होता है, वे ही जीव-जगत हुए हैं। विज्ञानी देखता है— जो निर्गुण हैं, वे ही सगुण हैं।

''छत पर बहुत देर मनुष्य ठहर नहीं सकता, फिर उतर आता है। जिन्होंने समाधिस्थ होकर ब्रह्मदर्शन कर लिया है, वे भी उतर कर आकर देखते हैं कि जीव-जगत वे ही हुए हैं। सा, रे, गा, मा, पा, धा, नी। 'नी' पर

बहुत देर नहीं ठहरा जाता। 'मैं' नहीं जाता, तब देखता है— वे ही मैं हूँ, वे ही जीव-जगत समस्त हैं। इसका ही नाम विज्ञान है।

''ज्ञान का पथ भी पथ है। ज्ञानभक्ति का पथ भी पथ है और फिर भक्ति का पथ भी पथ है। ज्ञानयोग भी सत्य है, भक्तिपथ भी सत्य है। सब पथों द्वारा ही उनके पास जाया जाता है। वे जब तक 'मैं' रखे हैं, तब तक भक्तिपथ ही सहज, सीधा है।

''विज्ञानी देखता है कि ब्रह्म अटल, निष्क्रिय, सुमेरुवत् है। यह जगत उसके तीन गुणों— सत्व, रज और तम से बना है। पर वह निर्लिप्त है।

विज्ञानी देखता है जो ब्रह्म हैं, वे ही भगवान हैं। जो गुणातीत हैं, वे ही षडैश्वर्यपूर्ण भगवान हैं। यह जीव-जगत, मन-बुद्धि, भक्ति-वैराग्य, ज्ञान— ये समस्त उनका ऐश्वर्य है। *(सहास्य)* जिस बाबू का घर-द्वार नहीं है, शायद बिक गया है, वह बाबू कैसा बाबू? *(सबका हास्य)*। ईश्वर षडैश्वर्यपूर्ण हैं। उस व्यक्ति का यदि ऐश्वर्य न होता तो फिर कौन मानता? *(सबका हास्य)*।

(विभु रूप में एक, किन्तु शक्ति विशेष)

''देखो ना, यह जगत कैसा विस्मयजनक है! कितने प्रकार की वस्तुएँ हैं— चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र! कितने तरह के जीव! बड़े-छोटे, भले-मन्दे— किसी की अधिक शक्ति, किसी की कम शक्ति।''

विद्यासागर— उन्होंने क्या किसी को अधिक शक्ति, किसी को कम शक्ति दी है?

श्रीरामकृष्ण— वे विभु रूप में सर्व भूतों में हैं— चींटी तक में। किन्तु शक्ति विशेष है। वैसा न हो तो एक जन दस जनों को हरा देता है, और फिर कोई एक व्यक्ति के पास से भागता है और वैसा यदि न होता तो तुम्हें ही सब लोग क्यों मानते हैं? तुम्हारे क्या दो सींग निकले हैं? *(हास्य)*। औरों की अपेक्षा तुम में दया है, तुम्हारे पास विद्या है। तभी तुम्हें लोग मानते हैं, तुम्हें मिलने आते हैं। तुम यह सब मानते हो कि नहीं?''

विद्यासागर मृदु-मृदु हँसते हैं।

(केवल पाण्डित्य, पोथीगत विद्या— असार, भक्ति ही सार)

श्रीरामकृष्ण— केवल पाण्डित्य कुछ नहीं है। पुस्तक पढ़ना उनको पाने का, उनको जानने का उपाय है। एक साधु की पुस्तक में क्या है— एक व्यक्ति के पूछने पर साधु ने खोलकर दिखा दिया। पन्ने-पन्ने पर 'ॐ राम' लिखा हुआ है और कुछ भी नहीं।

''गीता का अर्थ क्या है ? दस बार बोलने में जो होता है। 'गीता'-'गीता', दस बार बोलो तो, 'त्यागी'-'त्यागी' हो जाता है। गीता की यही शिक्षा है— हे जीव, सब त्याग करके भगवान-लाभ करने की चेष्टा कर। साधु ही हो, या गृही ही हो, मन से सब आसक्ति त्याग करनी चाहिए।

''चैतन्यदेव जब दक्षिण में तीर्थ-भ्रमण कर रहे थे— देखा एक व्यक्ति गीता पढ़ रहा है और अन्य एक जन थोड़ी दूर बैठा सुन रहा है, और रो रहा है— रो-रो कर आँखें डूबी जा रही हैं। चैतन्यदेव ने पूछा, 'तुम यह समस्त समझ रहे हो ?' वह बोला, 'ठाकुर! मैं श्लोक इत्यादि कुछ भी समझ नहीं पा रहा।' उन्होंने पूछा 'तो फिर क्यों रो रहे हो ?' वह भक्त बोला, 'मैं अर्जुन का रथ और उसके सामने भगवान और अर्जुन बातें कर रहे हैं'— देख रहा हूँ। उसे देखकर मैं रो रहा हूँ'।''

पञ्चम परिच्छेद

(भक्ति-योग का रहस्य— the secret of dualism)

श्रीरामकृष्ण— विज्ञानी क्यों भक्ति लेकर रहता है ? इसका उत्तर यही है कि 'मैं' तो जाता नहीं। समाधि-अवस्था में चाहे चला तो जाता है किन्तु फिर दोबारा आ पड़ता है। फिर साधारण जीव का 'अहं' तो जाता नहीं। अश्वत्थ के पौधे को काट दो, फिर अगले दिन फुनगी निकल आती है। *(सब का हास्य)*।

''ज्ञान-प्राप्ति के बाद फिर कहाँ से 'मैं' आ ही जाता है! स्वप्न में बाघ देखते हो। तत्पश्चात् जागने पर भी तुम्हारी छाती धड़कती रहती है।

जीव का 'मैं' लेकर ही तो जितनी समस्त यन्त्रणा है। बैल 'हम्बा' (मैं)-'हम्बा' (मैं) करता है तभी तो इतना कष्ट है। हल में जुतता है; धूप, वर्षा शरीर पर पड़ती है और फिर कसाई काटता है— चमड़े का जूता बनता है, ढोल बनता है, तब खूब पिटता है। *(हास्य)*।

''फिर भी निस्तार नहीं होता। अन्त में पेट की नाड़ी से ताँत तैयार होती है। उस ताँत से धुनिये का यन्त्र बनता है। तब फिर 'मैं' नहीं कहता, तब बोलता है 'तुँहूँ'-'तुँहूँ' (अर्थात् 'तुम'-'तुम')। जब 'तुम'-'तुम' कहता है, तब निस्तार। हे ईश्वर! मैं दास हूँ, तुम प्रभु हो; मैं पुत्र हूँ, तुम माँ हो।

''राम ने पूछा, हनुमान! तुम मुझे किस भाव से देखते हो? हनुमान बोले, राम! जब 'मैं' कहने से मुझे बोध रहता है, तब देखता हूँ, तुम पूर्ण हो, मैं अंश हूँ; तुम प्रभु, मैं दास। और राम! जब तत्त्वज्ञान होता है, तब देखता हूँ, तुम ही मैं हूँ, मैं ही तुम हो।

''सेव्य-सेवक भाव ही अच्छा है। 'मैं' तो जाने वाला नहीं है। तो फिर रहे साला 'दास मैं' बन कर।''

(विद्यासागर को शिक्षा— 'मैं' और 'मेरा' अज्ञान है)

'' 'मैं' और 'मेरा'— ये दोनों ही अज्ञान हैं। 'मेरा घर', 'मेरा रुपया', 'मेरी विद्या', 'मेरा यह समस्त ऐश्वर्य'— ये जो भाव है, वह अज्ञान से होता है। ''हे ईश्वर! तुम कर्त्ता हो और ये सब तुम्हारी वस्तुएँ हैं— घर-परिवार, लड़के-बच्चे, स्वजन, बन्धु-बान्धव— ये सब तुम्हारी चीजें हैं— यह भाव ज्ञान से होता है।

''मृत्यु को सर्वदा स्मरण रखना उचित। मरने पर कुछ भी नहीं रहेगा। यहाँ पर कुछ कर्म करने के लिए आना हुआ है। जैसे देहात में घर हो और कलकत्ता कर्म करने के लिए आना। बड़े व्यक्ति के बागान को यदि कोई देखने आता है, तो बागान का गुमाश्ता कहता है, 'यह बागान हमारा है', 'यह तालाब हमारा है।' किन्तु कोई दोष देखकर यदि मालिक गुमाश्ते को हटा दे

तो आम की लकड़ी के सन्दूक को भी ले जाने का अधिकार उसे नहीं रहता। मालिक दरबान के द्वारा सन्दूक भेज देता है। *(हास्य)*।

''भगवान दो बातों पर हँसते हैं। कविराज जब रोगी की माँ से कहता है, 'माँ, भय क्या ? मैं तुम्हारे लड़के को अच्छा (चंगा) कर दूँगा'— तब एक बार हँसते हैं कि मैं तो मार रहा हूँ और यह कहता है कि मैं बचाऊँगा। कविराज सोचता है, मैं कर्त्ता हूँ। ईश्वर जो कर्त्ता हैं, यह बात भूल गया है। और फिर जब दो भाई रस्सी लेकर जगह का भाग करते हैं और कहते हैं, 'इस तरफ की मेरी है, उस तरफ की तेरी है', तब ईश्वर और एक बार हँसते हैं। यह सोचकर हँसते हैं, 'जगत-ब्रह्माण्ड मेरा है किन्तु ये कहते हैं— यह जगह मेरी और यह तेरी है'।''

(उपाय— विश्वास और भक्ति)

''उन्हें क्या विचार करके जाना जाता है ? उनका दास होकर, उनके शरणागत होकर उन्हें पुकारो।''

(विद्यासागर के प्रति सहास्य)— ''अच्छा, तुम्हारा क्या भाव है ?''

विद्यासागर मृदु-मृदु हँसते हैं। कहते हैं,

''अच्छा, यह बात आपको अकेले में एक दिन बताऊँगा।'' *(सबका हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उनको पाण्डित्य द्वारा विचार करके नहीं जाना जाता।

यह कहकर ठाकुर प्रेमोन्मत्त होकर गाना गाने लगे—

ईश्वर अगम्य और अपार

के जाने काली केमन।
षड़दर्शने ना पाय दर्शन॥
मूलाधारे सहस्रारे सदा योगी करे मनन।
काली पद्मबने हंस सने, हंसी रूपे करे रमण॥

आत्मारामेर आत्मा काली प्रमाण प्रणवेर मतन।
तिनि घटे-घटे विराज करेन इच्छामयीर इच्छा जेमन॥

मायेर उदरे ब्रह्माण्ड भाण्ड प्रकाण्ड ता जानो केमन।
महाकाल जेनेछेन कालीर मर्म, अन्य केबा जाने तेमन॥

प्रसाद भासे लोके हासे, सन्तरणे सिन्धु तरण।
आमार मन बुझेछे प्राण बुझे ना धरबे शशी होये बामन॥

[भावार्थ— कौन जानता है कि काली कैसी है! षड्दर्शन में भी उनका दर्शन नहीं मिलता। मूलाधार और सहस्रार में योगी सदा ध्यान करते हैं। काली रूप पद्मवन में वे हंस के संग हंसी के रूप में रमण करती हैं। आत्माराम की आत्मा काली हैं, प्रमाण प्रणव ('ॐ') के जैसा है। वे घट-घट में वास करती हैं, इच्छामयी की जैसी इच्छा होती है। माँ के पेट में ब्रह्माण्ड रूप भाण्ड है। उसकी प्रकाण्डता जानते हो, कैसी है? महाकाल शिव जैसा काली का मर्म जानते हैं, अन्य कौन वैसा जान पाता है? 'प्रसाद' तैर रहा है। लोग हँसते हैं कि समुद्र को तैरकर पार करना चाहता है। मेरे मन ने तो समझा है किन्तु प्राण नहीं समझता, वामन (नाटा) होकर शशी को पकड़ना चाहता है।]

''देखा, काली के उदर में ब्रह्माण्ड भाण्ड प्रकाण्ड है। उसे कैसे जानोगे! और कहते हैं 'षड़्दर्शने ना पाय दरशन'— पाण्डित्य से उनको नहीं प्राप्त किया जाता।''

(विश्वास का जोर— ईश्वर में विश्वास और महापातक)

''विश्वास और भक्ति चाहिए। विश्वास का कितना जोर है, सुनो। एक व्यक्ति लंका से समुद्र पार करेगा। विभीषण ने कहा, 'यह वस्तु धोती के छोर में बाँध लो। तो फिर निर्विघ्न चले जाओगे। जल के ऊपर से जा सकोगे। किन्तु खोलकर मत देखना। खोलकर देखने लगते ही डूब जाओगे।' वह व्यक्ति समुद्र के ऊपर से अच्छे-से चला जा रहा था। विश्वास का ऐसा जोर है! कुछ रास्ता चलकर सोचने लगा, विभीषण ने ऐसी क्या वस्तु बाँध दी है कि जो जल के ऊपर से चला जा सकता है। यह कहकर धोती का छोर खोलकर देखने लगा कि केवल 'राम'-नाम लिखा हुआ एक पत्ता है। तब वह सोचने लगा, बस यही चीज! ज्यों ही सोचा, त्यों ही डूब गया।

''कहते हैं हनुमान का 'राम'-नाम में इतना विश्वास था कि विश्वास के गुण से सागर-लंघन कर लिया। किन्तु स्वयं राम को सागर पार करने के लिए पुल बाँधना पड़ा।

''यदि उन पर विश्वास रहे, तो फिर पाप ही करे, या फिर महापातक ही करे, किसी में भी भय नहीं।''

यह कहकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्त का भाव आरोप करके भाव में मतवाले होकर विश्वास का माहात्म्य गाने लगे—

आमि 'दुर्गा-दुर्गा' बोले मा यदि मरि।
आखेरे ए दीने, ना तारो केमने, जाना जाबे गो शंकरी।
नाशि गो ब्राह्मण, हत्या करि भ्रूण, सुरापान आदि विनाशि नारी।
ए सब पातक, ना भावि तिलेक, ब्रह्मपद निते पारि।*

षष्ठ परिच्छेद

(ईश्वर को प्यार करना जीवन का उद्देश्य
the end of life)

श्रीरामकृष्ण— विश्वास और भक्ति। उन्हें भक्ति से सहज में पाया जाता है। वे भाव का विषय हैं।

यह बात कहते-कहते ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने फिर और गाना पकड़ लिया—

मन कि तत्व करो ताँरे जेनो उन्मत्त आँधार घरे
शे जे भावेर विषय भाव व्यतीत, अभावे के धरते पारे॥

---

* दुर्गा-दुर्गा अगर जपूँ मैं, जब मेरे निकलेंगे प्राण।
देखूँ कैसे नहीं तारती हो तुम करुणा की खान॥
गो-ब्राह्मण की हत्या करके, करके भी मदिरा का पान।
ज़रा नहीं परवाह पापों की, लूँगा निश्चय पद निर्वाण॥
— 'निराला'

अग्रे शशि वशीभूत करो तब शक्ति सारे।
ओरे कोठार भीतर चोर कुठरी, भोर होले से लुकाबे रे॥

षड़्दर्शने ना पाय दर्शन, आगम निगम तन्त्र सारे।
से जे भक्ति रसेर रसिक, सदानन्दे विराज करे पूरे॥

से भाव लागि परम योगि, योग करे युगयुगान्तरे।
होले भावेर उदय लय से जेमन, लोहा के चुम्बके धरे॥

प्रसाद बोले मातृ भावे आमि तत्व करि जाँरे।
सेटा चातरे कि भांगवो हाँड़ि, बोझो ना रे मन ठारे ठोरे॥

[भावार्थ— हे मन, तुम उनके लिए जो विचार कर रहे हो, वह तो मानो अन्धेरे कमरे में उन्मत्त की भाँति फिरना है। वे तो भाव के विषय हैं, उन्हें भाव बिना अभाव में क्या ग्रहण कर सकते हो? अपनी सामर्थ्य के अनुसार पहले शशी को वशीभूत करो। वह तो कोठे के भीतर चोर कोठरी में है, भोर होते ही छिप जाएगा। उसका दर्शन तो षड्दर्शन, वेद, तन्त्र कोई भी नहीं पाता। वह तो भक्ति-रस का रसिक सदानन्द अन्तर में निवास करता है। उसके भाव के लिए युग-युगान्तर से योगीजन योग कर रहे हैं। भाव का उदय हो जाने पर वह ऐसे ही लय कर लेता है जैसे चुम्बक लोहे को पकड़ लेता है। प्रसाद कहते हैं, मैं जिसका मातृभाव में ध्यान करता हूँ, उस भेद को हे मन! क्या मैं सबके सामने चबूतरे पर खोल दूँ? हे मन, इशारा समझो।]

(ठाकुर समाधिमन्दिर में)

गाना गाते-गाते ठाकुर समाधिस्थ हो गए। हाथ अञ्जलिबद्ध! देह उन्नत और स्थिर! नेत्रद्वय स्पन्दहीन! उसी बेंच पर पश्चिमास्य होकर पाँव फैला कर बैठे हैं। सब उदग्रीव होकर वह अद्भुत अवस्था देख रहे हैं। पण्डित विद्यासागर भी निस्तब्ध होकर एक दृष्टि से देखते हैं।

ठाकुर प्रकृतिस्थ हो गए। दीर्घ नि:श्वास छोड़कर और फिर सहास्य बातें करते हैं—

''भावभक्ति, इसका अर्थ है— उनको प्यार करना। जो ब्रह्म हैं, उनको ही 'माँ' कहकर पुकारते हैं।

''प्रसाद कहते हैं, मातृ-भाव में मैं जिस तत्त्व को यथार्थ जानता हूँ, उस तत्त्व की हण्डी क्या मैं चबूतरे पर फोड़ूँगा? हे मन, इशारा समझो।

''रामप्रसाद मन को कहते हैं, इशारा समझो। वे यह समझने को कह रहे हैं कि वेद में जिन्हें ब्रह्म कहा है— उनको ही मैं माँ कहकर पुकारता हूँ। जो निर्गुण हैं, वे ही सगुण हैं; जो ब्रह्म हैं, वे ही शक्ति हैं। जब 'निष्क्रिय रूप में' बोध होते हैं, तब उनको 'ब्रह्म' कहता हूँ। जब सोचता हूँ 'सृष्टि-स्थिति-प्रलय करते हैं', उनको 'आद्याशक्ति' कहता हूँ, 'काली' कहता हूँ।

''ब्रह्म और शक्ति अभेद। जैसे अग्नि और दाहिका शक्ति। अग्नि कहते ही दाहिका शक्ति समझी जाती है, दाहिका शक्ति कहते ही अग्नि समझी जाती है। एक को मान लेने से ही और एक को भी मानना हो जाता है।

''उनको ही 'माँ' कहकर पुकारा जाता है। 'माँ' बहुत प्यार की वस्तु है कि ना! ईश्वर को प्यार कर सकने से ही उनको प्राप्त किया जाता है। भाव, भक्ति, प्यार और विश्वास! और एक गाना सुनो—

(उपाय— पहले विश्वास, तत्पश्चात् भक्ति)

''भाविले भावेर उदय होय।
(ओ से) जेमन भाव, तेमनि लाभ मूल शे प्रत्यय॥
कालिपद सुधाह्रदे, चित्त यदि रय (यदि चित्त डूबे रय)।
तबे पूजा-होम-याग-यज्ञ, किछुइ किछु नय॥*

''चित्त तद्गत (उनमें जाना) हो जाना, उनको खूब प्यार करना। वे हैं 'सुधाह्रद' अर्थात् अमृत का सरोवर। उसमें डूबने से मनुष्य मरता नहीं। अमर हो जाता है। कोई-कोई सोचता है कि ज्यादा ईश्वर-ईश्वर करने से माथा बिगड़ जाता है पर ऐसा नहीं है। यह तो सुधाह्रद है, अमृत का सागर है। वेदों में उसे अमृत कहा है। इसमें डूब जाने से मरता नहीं, अमर हो जाता है।''

---

* चिन्तन से 'भाव' का उदय होता है। अरे जैसा भाव, वैसा लाभ, मूल है वही प्रत्यय (विश्वास)। काली-चरण रूपी सुधा-सरोवर में चित्त यदि रमे (यदि चित्त डूबा रहे) तो पूजा-होम-याग-यज्ञ कुछ भी नहीं है।

(निष्काम कर्म वा कर्मयोग और 'जगत का उपकार'
Shri Ramakrishna and the European ideal of work)

''पूजा, होम, याग, यज्ञ कुछ भी कुछ नहीं है। यदि उनके ऊपर प्यार आ जाता है तो फिर और सब कर्मों का अधिक प्रयोजन नहीं रहता। जब तक हवा नहीं चलती, तब तक ही पंखे का प्रयोजन है। यदि दक्षिणी पवन स्वयं ही आती है तो पंखा रख दिया जाता है। फिर पंखे का क्या प्रयोजन ?

''तुम जो ये सब कार्य कर रहे हो, ये सब सत्कर्म हैं। यदि 'मैं कर्ता' यह अहंकार त्याग करके निष्काम भाव से कर सको, तब तो फिर बहुत ही अच्छा है। ऐसा निष्काम कर्म करते-करते ईश्वर में भक्ति-प्यार आता है। इसी प्रकार निष्काम कर्म करते-करते ईश्वर-लाभ होता है।

''किन्तु जितना उनके ऊपर भक्ति और प्यार आएगा, उतना ही तुम्हारा कर्म कम हो जाएगा। गृहस्थ की बहू के पेट में जब बच्चा होता है, सास उसका कर्म कम कर देती है। जितने ही महीने बढ़ते हैं, सास कर्म कम करती जाती है। दस महीने होने पर बिल्कुल कर्म करने नहीं देती, बच्चे को कहीं पीछे हानि न हो, प्रसव में कोई व्यवधान न हो। *(हास्य)*। तुम जो ये सब कर्म कर रहे हो, इससे तुम्हारा अपना उपकार है। निष्काम भाव में कर्म कर सकने पर चित्त-शुद्धि होगी, ईश्वर के ऊपर तुम्हारा प्यार आएगा। प्यार आने पर ही उनको प्राप्त कर सकोगे। जगत का उपकार मनुष्य नहीं करता, वे ही करते हैं; जिन्होंने चन्द्र-सूर्य बनाए हैं, जिन्होंने माँ-बाप का स्नेह, जिन्होंने बड़ों के भीतर दया, जिन्होंने साधु-भक्त के भीतर भक्ति दी है। जो व्यक्ति कामना-शून्य होकर कर्म करेगा, वह निज का ही मंगल करेगा।''

निष्काम कर्म का उद्देश्य ईश्वर-दर्शन

''अन्तर में सोना है, अभी भी खबर नहीं लगी है। थोड़ी-सी मिट्टी से ढका हुआ है। यदि एक बार सन्धान मिल जाए तो अन्य काज कम हो जाएँगे। गृहस्थ की बहू के बच्चा हो जाने पर वह उसे ही लिए रहती है, उसी को लेकर लगी रहती है, गृहस्थी का कार्य सास करने नहीं देती। *(सबका हास्य)*।

''और आगे बढ़ो। लकड़हारा लकड़ी काटने गया था— ब्रह्मचारी ने कहा, 'आगे आओ।' उसने आगे जाकर चन्दन के वृक्ष देखे। फिर और कुछ दिन बाद सोचा, 'ब्रह्मचारी ने आगे जाने को कहा था, चन्दन के वृक्षों तक ही तो जाने को नहीं कहा था'। आगे जाकर देखता है चाँदी की खान। और फिर कुछ दिन पश्चात् और आगे जाकर देखता है, सोने की खान। तत्पश्चात् केवल हीरा, माणिक। यह सब लेकर बहुत धनवान हो गया।

''निष्काम कर्म कर सकने पर ईश्वर से प्यार होता है, क्रमश: उनकी कृपा से उनकी प्राप्ति हो जाती है। ईश्वर को देखा जाता है, उनके साथ बातें की जाती हैं, जैसे मैं तुम्हारे संग बातें कर रहा हूँ।'' *(सब नि:शब्द)*।

सप्तम परिच्छेद

(ठाकुर अहेतुक कृपा-सिन्धु)

सब अवाक् और निस्तब्ध होकर ये सब बातें सुनते हैं। मानो साक्षात् वाग्वादिनी (सरस्वती) श्रीरामकृष्ण की जिह्वा पर अवतीर्ण होकर विद्यासागर को उपलक्ष्य करके जीव के मंगल के लिए बातें कह रही हैं। रात्रि हो गई, नौ बजे हैं। ठाकुर अब विदा लेंगे।

श्रीरामकृष्ण *(विद्यासागर के प्रति सहास्य)*— यह जो मैंने कहा है, कहना ही व्यर्थ है, आप सब जानते हैं— तथापि खबर नहीं है। *(सबका हास्य)*। वरुण के भण्डार में कितने, कैसे रत्न हैं— वरुण राजा को खबर नहीं।

विद्यासागर *(सहास्य)*— वह आप कह सकते हैं!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ जी, अनेक बाबू नौकरों-चाकरों के नाम नहीं जानते *(सबका हास्य)*— घर में कहाँ पर क्या दामी वस्तु है— यह भी नहीं जानते।

कथावार्ता सुनकर सब आनन्दित हैं। सब थोड़ी देर चुप रहे। ठाकुर फिर विद्यासागर को सम्बोधन करके बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— एक बार बागान देखने आइए, रासमणि का बागान। बड़ी सुन्दर जगह है।

विद्यासागर— आऊँगा! जरूर। आप आए हैं, फिर मैं नहीं आऊँगा!

श्रीरामकृष्ण— मेरे पास! छी! छी!!

विद्यासागर— वह क्या! ऐसी बात क्यों कहते हैं? मुझे समझा दें।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हम! जैलेडिंगि *(सब का हास्य)*। नहर, टोबा या बड़ी नदी में जा सकते हैं। किन्तु आप जहाज हैं। क्या पता, जाने पर वहाँ रेत में फँस जाए। *(सब का हास्य)*।

विद्यासागर सहास्यवदन, चुप हैं। ठाकुर हँसते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उसमें इस समय जहाज भी जा सकते हैं।

विद्यासागर *(सहास्य)*— हाँ, यह तो वर्षा-काल ही है। *(सब का हास्य)*।

मास्टर *(स्वगत)*— नवानुराग की वर्षा, नवानुराग के समय मान-अपमान का बोध नहीं रहता!

ठाकुर उठे भक्तों के संग। विद्यासागर आत्मीयजनों के संग खड़े हो गए। ठाकुर को गाड़ी में बिठा देंगे।

श्रीरामकृष्ण क्यों अब भी खड़े हुए हैं! मूलमन्त्र हाथ पर जप रहे हैं, जपते-जपते भावाविष्ट हो रहे हैं! अहेतुक कृपा-सिन्धु! शायद जाते समय महात्मा विद्यासागर के आध्यात्मिक मंगल के लिए माँ के निकट प्रार्थना कर रहे हैं।

ठाकुर भक्तों के संग सीढ़ी उतर रहे हैं। एक भक्त का हाथ पकड़ा हुआ है। विद्यासागर स्वजनों के संग आगे-आगे जा रहे हैं— हाथ में बत्ती है, पथ दिखाते हुए आगे-आगे जा रहे हैं। श्रावण कृष्णा षष्ठी, अभी तक चाँद नहीं निकला। तमसावृत उद्यान-भूमि के बीच में से सब लोग बत्ती के क्षीण प्रकाश को देखते हुए फाटक की ओर आ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग फाटक के निकट ज्यों ही पहुँचे, त्योंही सभी एक सुन्दर दृश्य देखकर खड़े के खड़े रह गए। सम्मुख देखा— बंगाली वस्त्रधारी एक गौरवर्ण दाढ़ीवाला पुरुष! आयु लगभग 36-37,

सिर पर सिखों जैसी सफेद पगड़ी, बदन पर धोती-कुरता, मौजा। चादर नहीं। वे पुरुष श्रीरामकृष्ण के दर्शन करते ही पगड़ी समेत धरती पर सिर रखकर भूमिष्ठ हो गए हैं। उनके खड़े होने पर ठाकुर बोले,

''बलराम तुम? इतनी रात को?''

बलराम *(सहास्य)*— मैं बहुत देर से आकर यहाँ पर खड़ा हुआ हूँ।

श्रीरामकृष्ण— भीतर क्यों नहीं गए?

बलराम— जी, सब लोग आपकी कथावार्ता सुन रहे थे, बीच में जाकर विरक्त (शान्ति-भंग) करना। *(यह कहकर बलराम हँसने लगे।)*

ठाकुर भक्तों के साथ गाड़ी में बैठते हैं।

विद्यासागर *(मास्टर के प्रति मृदु स्वर में)*— भाड़ा क्या दूँ?

मास्टर— जी नहीं, वह हो गया है।

विद्यासागर और अन्यान्य सबने ठाकुर को प्रणाम किया।

गाड़ी उत्तराभिमुख हाँक दी। गाड़ी दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में जाएगी। अब भी सब खड़े हुए गाड़ी की ओर देखते हैं। लगता है, सोच रहे हैं, यह महापुरुष कौन हैं जो ईश्वर को इतना प्यार करते हैं, और जो जीवों के घर-घर में फिरते हैं, और कहते हैं ईश्वर को प्यार करना ही जीवन का उद्देश्य है!